आपबीती

एक 'व्यवस्थित' पागलपन

रेशमा वलिअप्पन

Pain
DO YOU HAVE PANIC ATTACKS?
DO YOU WORRY OVER MINOR MATTERS?
Hypochondr
ANXIETY RESEARCH 18-50 years old
PANIC ATTACK
DEPRESSED?
Anxiety
DEPRESSED?
PANIC ATTA
DEPRESSION
DEPRESSION!
PANIC ATTACKS
DEPRESSION?
ANXIETY
DEPRESSED?

“तुम मुझसे पूछते हो 'कैसी हो' और मेरे जवाब का इंतज़ार नहीं करते। फिर कहते हो मैं असामाजिक और रूखी हूं।

तुम मुझसे पूछते हो 'तुम यहां क्या कर रही हो, सबके साथ अंदर क्यों नहीं हो?' मैं कहती हूं– 'अति उत्तेजना और तेज़ रोशनी से मुझे दिक्कत होती है... और' वाक्य पूरा होने से पहले ही तुम मेरे लिए दयाभाव लिए चल देते हो। और सब कहते हैं, 'मैं खुद को अभिव्यक्त नहीं कर पाती और अपनी ही दुनिया में रहती हूं।'

तुम मुझसे पूछते हो, 'तुम इसके बारे में क्या सोचती हो?' और मैं कहती हूं– 'मुझे लगता है...?' तभी कोई बीच में बोलता है, कोई दूसरी बात शुरू हो जाती है और मैं चुपचाप चली जाती हूं। फिर तुम दोनों कहते हो, 'कितनी अजीब है। हम बात कर रहे हैं और वो चली गई। बेचारी की अपनी कुछ सीमाएं हैं।'

तुम मुझसे पूछते हो, 'तुम इसे ऐसे क्यों कर रही हो मैंने तो इसे दूसरे तरीक़े से करने को कहा था न?' और मैं कहती हूं– 'क्योंकि मैं ऐसी ही हूं और मुझे तुम्हारे तरीक़े से इसे करना नहीं आता' और फिर कोई मुझे कहता है– तुम्हें खुद को संतुलन में रखना आना चाहिए।' और मैं कुछ सोचती हुई अपना सर खुजाती हूं।

तुम मुझे कहती हो, 'अगर तुम दूसरों को नहीं बताओगी कि तुम क्या सोचती और महसूस करती हो तो तुम उनसे खुद को समझने की उम्मीद कैसे कर सकती हो?' मैं बताती हूं, 'पर मैंने ऐसा किया था... किसी ने ध्यान नहीं दिया' और तुम जवाब देती हो, 'अब पुरानी बातों को छोड़ दो, तुम आगे बढ़ना सीखो।'

तुम मुझे फिर कहती हो, 'एक रुटीन बना लो, नौकरी करो'। मैं जवाब देती हूं, 'मेरा एक रुटीन है। आठ घंटे का नहीं बल्कि हर बीस मिनट का।' फिर उन्होंने कहा, 'मैं अतिसक्रिय हूं और मुझे संतुलित होने की ज़रूरत है। मैंने नौकरी भी की। कई बार। पर मुझे डर था कि कहीं वे मुझ पर लगे 'लेबल' के बारे में जान गए तो...इसलिए मैंने काम छोड़ दिया।' फिर उन्होंने कहा 'देखा ये कुछ भी लग कर नहीं करते।' इसलिए मैंने दूसरों पर निर्भर होना छोड़कर वो सब करना शुरू कर दिया जो मेरे लिए ठीक था। पर फिर तुमने कहा, 'तुम एक चीज़ ठीक से क्यों नहीं करती। इतना सब करने की क्या ज़रूरत है? मैंने जवाब दिया, 'मैं आत्मनिर्भर हूं, तुम्हें इसमें दिक्कत क्या है' और तुमने कहा कि मैं खुदगर्ज़ बन रही हूं और मुझे दूसरों के साथ समय बिताने की ज़रूरत है, न कि इतनी सारी चीज़ें एक साथ करके सच्चाई से भागने की।' इस बार मैंने ज़ोर से अपने हाथ को खरोंचा और खून निकलने लगा।

फिर उन्होंने कहा, 'तुम बार–बार ये चीज़ें नहीं कर सकतीं।' मैंने पूछा 'कौन सी चीज़ें?' उन्होंने कहा, 'तुम अपने आप को और तुमसे प्यार करने वालों को नुकसान पहुंचा रही हो।' मैंने जवाब दिया, 'अच्छा...पर कैसे?' फिर उन्होंने कहा, 'देखा, तुम्हें तो यह भी नहीं पता कि तुम क्या करती हो?' इसलिए मैं बाहर निकल आती हूं और नॉर्मल होने की कोशिश करती हूं और सब लोगों की तरह व्यवहार करती हूं। मेरी आंखों में तेज़ रोशनी से दर्द होने लगता है, सर में 'माइग्रेन' भी हुआ। मैं घबराई और फौरन वापस लौट गई। फिर मुझे सुनाई दिया, 'इसको क्या हुआ?' फिर सब बोले, 'इन लोगों को दूसरों के साथ रहना और बात करना नहीं आता।'

इस बार सब कहते हैं, 'देखा, हम सही थे। ये खुद में सिमट जाते हैं और मायूस हो जाते हैं और फिर भी नकारते रहते हैं कि उनको मदद की ज़रूरत नहीं है।' और आखिकार हममें से कोई एक आकर और तुममें से एक के साथ मारपीट कर देता है। और पूरी दुनिया कहती है– 'पैरनॉइड', मनोरोगी (साइकॉटिक) भ्रांतिमूलक (डिल्यूशनल)... इसे तो बंद करके रखने की ज़रूरत है।'

क्या ऐसा केवल मेरे ही साथ हो रहा है या फिर मेरे जैसे दूसरे लोग भी इसी पीड़ा का शिकार है? २२ वर्ष की उम्र में मुझे ‘पैरनॉइड’ यानी ‘खंडित मनस्कता’ से ग्रस्त बताया गया– यह मेरे यौवन और शिक्षा का सबसे चरम दौर था। मेरे लिए यह कोई आसान बात नहीं थी– मेरा इलाज किया गया, मैंने कई सहयोग समूहों के साथ भी वक्त बिताया, पर इस कुचक्र से बाहर नहीं आ सकी। कई दोस्तों ने हमारे परिवार के साथ मिलना–जुलना कम कर दिया। मुझे पूछना पड़ा, ‘क्या मैं वाकई इतनी खराब हूं।’ ये सब मेरे साथ बात क्यों नहीं करते?’

मैं बेहतर हुई। थेरेपी चिकित्सा और परामर्श ने मुझे अपनी पढ़ाई जारी रखने को प्रेरित किया– चिकित्सीय मनोविज्ञान में क्योंकि मैं अपने ‘रोग’ से गहन रूप से परिचित थी। पर यहां भी मुझे ‘फ़िटनेस सार्टिफ़िकेट और अपने मनोचिकित्सक, परामर्शदाता, सहयोग समूह और केयरटेकर से लिखित पत्र लाने को कहा गया जिसमें साफ़ लिखा हो कि “मैं खुद के व दूसरों के लिए खतरा नहीं बनूंगी।’ आज मैं पूछती हूं कितने ‘नार्मल’ व्यक्तियों को इस तरह की चिट्ठियां जमा करने को कहा जाता है? मैंने कभी भी किसी बाहरी व्यक्ति के साथ हिंसा नहीं की। फिर मेरे दूसरों की तरह शिक्षा पाना इतना मुश्किल क्यों बना दिया गया?”

जब मैं नौकरी ढूंढती हूं तो मेरे साथ भेदभाव किया जाता है क्योंकि सिर्फ़ एक ‘गूगल’ के ज़रिए पता लगाया जा सकता हैं कि “मैं कौन हूं।” मेरे लिए तो “मैं कौन हूं” का बुनियादी सवाल ही दुनिया की नज़र में “तुम क्या हो” बन गया है। व्यवस्था कहती है “तुम स्वीकार करो और अपनी कहानियां सब तक पहुंचाओ। दूसरों के साथ बांटो जिससे भेदभाव और रुढ़िवादिता से लड़ा जा सके।” पर मैं सोचती हूं व्यवस्था ने मेरी किस तरह मदद की है? संविधान द्वारा मिले बुनियादी अधिकार भी मुझे नहीं मिले हैं। एक ‘लेबल’ के ज़रिए मेरा वोट डालने का क़ानूनी हक छीन लिया गया है। मैं कोई अनुबंध नहीं कर सकती, सरकारी पद पर नहीं हो सकती। अपने इलाज में मेरी कोई मर्ज़ी नहीं पूछी जाती। आज अगर मेरे पास जीवकोपार्जन का कोई साधन हो तो मुझे टैक्स देना पड़ेगा। पर जब मेरे कोई क़ानूनी हक़ नहीं है तो मैं टैक्स क्यों दूं?

मैं अपनी अच्छी सेहत का श्रेय अनेक सदस्य, चिकित्सकों व साथियों को देती हूं। वे भी इसी व्यवस्था का हिस्सा है पर मैं सोचती हूं कि उनके बारे में कभी सुना या देखा क्यों नहीं जाता।

मैं आवाज़ों को सुनती हूं...और आशा करती हूं कि शायद कभी मेरी आवाज़ भी सुनी जाएगी। विकलांगता किसी को भी प्रभावित कर सकती है, मानसिक रोग या मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे भी। कौन से इंसान ने अपनी जीवन में गुस्सा, चोट, दर्द, तड़प, मायूसी, दुःख, बेइंतहा खुशी, वैकल्पिक यौनिकता व जीवन शैली या मानसिक आघात का सामना नहीं किया है? हर एक व्यक्ति अपने जीवन में कभी न कभी मानसिक तनाव और संघर्ष से गुज़रता ही है। तो क्या उन्हें मनोचिकित्सीय निदान की ज़रूरत होती है? इतनी बड़ी जनसंख्या में कितने ही लोग मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों से जूझते होंगे? क्या इसका अर्थ यह है कि हम सबकी क़ानूनी क्षमता छीनकर उनके साथ हर संभव भेदभाव करें?

कोई सामाजिक कौशल को कैसे सीखे जब मिलने–जुलने–पढ़ने के लिए कोई इंतज़ाम न हो? इस स्वतंत्र देश में मानसिक रोगियों के कोई क़ानूनी हक़ नहीं हैं। वे कोई नौकरी नहीं कर सकते, वोट नहीं डाल सकते, अपनी काबलियत पर सवाल उठाए जाने से पहले अपनी बात नहीं कह सकते। जिन मांओं को मानसिक रूप से–‘अस्वस्थ’ ठहरा दिया जाए उन्हें बच्चों पर संरक्षण का हक़ नहीं मिलता। ‘पागल’ साबित करके उनकी सम्पति, बीमा छीना जा सकता है, तलाक़ दिया जा सकता है। कोई दूसरा तय कर देता है कि उन्हें कब और कौन से इलाज की ज़रूरत है। अगर वे अपने विचार, मूल्य या फलसफा रखें तो उनके साथ और कठोर सुलूक किया जाता है।

या तो वे शारीरिक रूप से कैद में रहते हैं या ज़िंदा मौत जीते हैं। उन पर कोई भी विश्वास नहीं करता। एक समय के दोस्त धीरे–धीरे साथ छोड़ देते हैं।

भेदभाव लगातार चलता रहता है। अकेलापन चैन का एकमात्र रास्ता है। पागलपन इन लोगों में नहीं उनके आस–पास के समाज, परिवारों, और व्यवस्था में रचा–बसा है। यही पागलपन उन्हें दोषी करार देकर अलग रखता है। और इनकी अपनी सच्चाई है इनका पागलपन जिसे कोई इंसान, क़ानून, दर्द और प्यार इनसे जुदा नहीं कर सकता। यह पागलपन इनकी गरिमा है जिसके साथ ये जीते हैं और मर जाते हैं। ”

रेशमा वलिअप्पन *चित्रकार, मार्शल आर्टिस्ट, लेखिका*
और मानसिक स्वास्थ्य पर कार्यरत पत्रकार हैं।